देशद्रोही

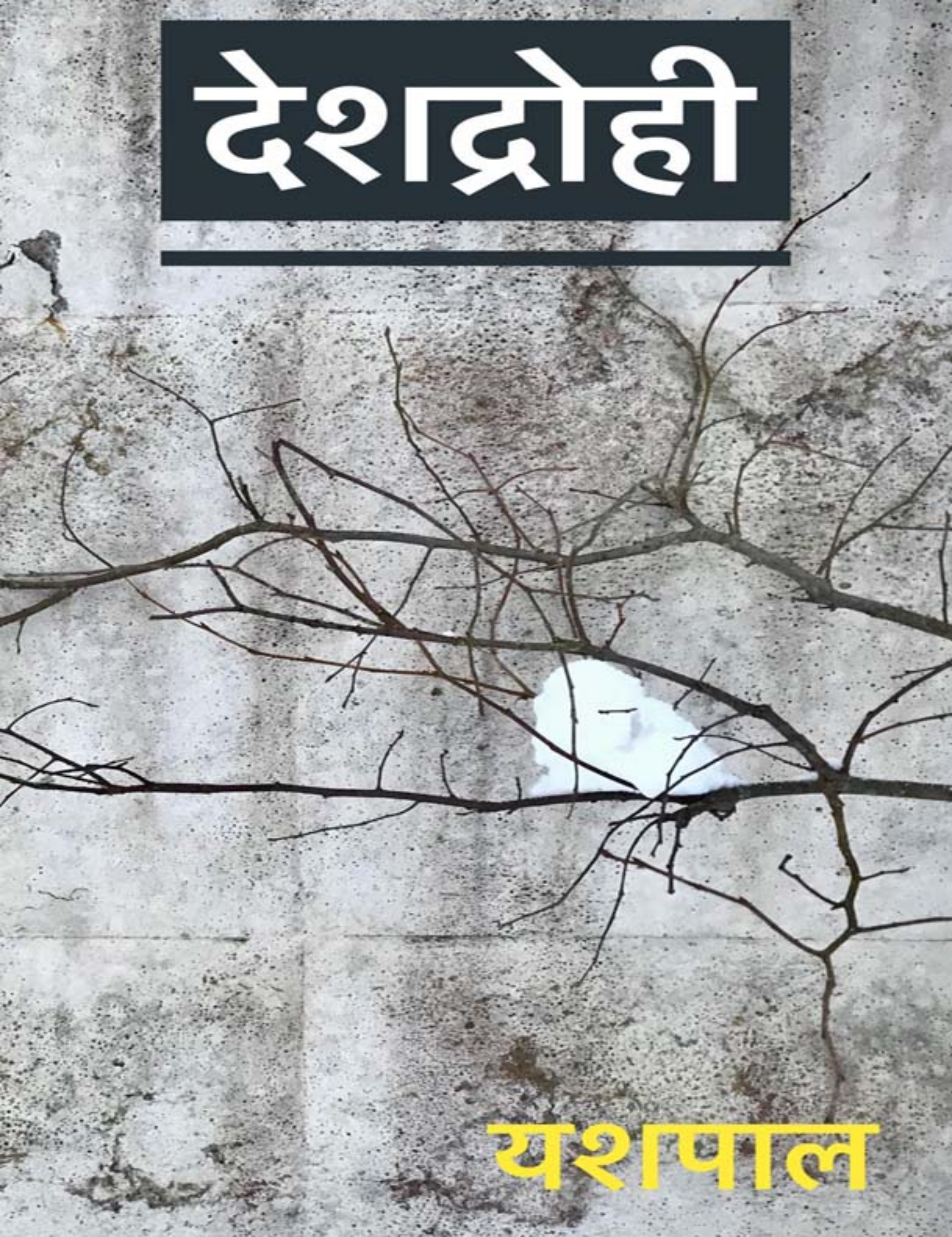

यशपाल

देशद्रोही

यशपाल

देशद्रोही

यशपाल

(1903-1976)

जन्म : फ़िरोजपुर छावनी, पंजाब में।

शिक्षा : प्रारम्भिक शिक्षा गुरुकुल काँगड़ी, डी.ए.वी. स्कूल, लाहौर और फिर मनोहर लाल हाई स्कूल में हुई। वहीं से सन् 1921 में प्रथम श्रेणी में मैट्रिक की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए।

गतिविधियाँ : प्रारम्भिक जीवन रोमांचक कथाओं के नायकों सा है। भगत सिंह, सुखदेव, बोहरा और आजाद के साथ मिलकर क्रान्तिकारी कार्यों में खुलकर भाग लिया। सन् 1931 में 'हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातंत्र सेना के सेनापति आजाद के मारे जाने पर सेनापति नियुक्त। 1932 में पुलिस के साथ एक मुठभेड़ में इलाहाबाद में गिरफ्तार। 1938 में जेल से छूटे। तब से अंतिम दिन तक लेखन कार्य में संलग्न रहे।

मृत्यु : 26 दिसम्बर, 1976

आवरण : गोगी सरोज पाल

1945 में निओली (उ.प्र.) में जन्मी गोगी सरोज पाल की शिक्षा बनस्थली कॉलेज ऑफ आर्ट, लखनऊ तथा कॉलेज ऑफ आर्ट, नई दिल्ली में हुई। कलाकार के रूप में अपनी रचनात्मकता की संपूर्ण अभिव्यक्ति के लिए आपने हर संभव माध्यम में काम किया और अपनी पहचान छोड़ी है। अभी तक आप पेंटिग, शिल्प, ग्राफिक, प्रिंट, सेरामिक्स, इंस्टालेशन, बुनाई, फोटोग्राफी और कंप्यूटर के अलावा लेखन के क्षेत्र में भी काम कर चुकी हैं।

1945 से अभी तक आपकी 41 एकल प्रदर्शनियाँ आयोजित हो चुकी हैं। इसके अलावा 41 विदेशों में तथा भारत में आयोजित 150 प्रदर्शनियों में आपका काम शामिल रहा है। भारत, जर्मनी, इंग्लैंड और अमेरिका में इंस्टालेशन के माध्यम से सराहनीय कार्य।

सम्मान : क्लीवलैंड ड्राईंग बिनाले (यू.के.) ललित कला अकादमी, नई दिल्ली, अल्जीयर्स में इंटरनेशनल बिनाले ऑफ प्लास्टिक आर्ट्स के सम्मानों के अलावा संस्कृति अवार्ड।

देशद्रोही

यशपाल

प्रगतिशील सामाजिक चेतना के समर्थ कथाकार यशपाल ने अपने इस उपन्यास का परिचय देते हुए लिखा कि 'साहित्य का कलाकार केवल चारण बनकर सौंदर्य, पौरुष और तृप्ति की महिमा गाकर ही अपने सामाजिक कर्त्तव्य को पूरा नहीं कर सकता। विकास और पूर्णता के सामाजिक प्रयत्न की इच्छा और उत्साह उत्पन्न करना और उस उत्साह को विवेक और विश्लेषण की प्रवृत्ति द्वारा सजग और सचेत रखने की भावना जगाना, यही साहित्य के कलाकार का काम है।'

यह उपन्यास उनकी इसी धारणा का रचनात्मक प्रतिफलन है। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के 1942 के दौर, उत्तर सीमांत और तत्कालीन दक्षिण सोवियत के जीवंत चित्रों से संपन्न इस उपन्यास के विषय में महापण्डित राहुल सांकृत्यायन की टिप्पणी थी: 'यशपाल की तूलिका उतावलेपन के लिए नहीं, स्थायी मूल्य की चीजों के लिए है। इस उपन्यास को संसार की किसी भी उन्नत भाषा के उपन्यासों की श्रेणी में तुलना के लिए रखा जा सकता है।' वहीं इतिहासविद भगवतशरण उपाध्याय ने इस उपन्यास को ताल्स्ताय और शोलोखोव की रचनाओं की श्रेणी में गिना था।

समर्पण

कल्पना के चाँद को

जिसे पाने का प्रयत्न संतोष, साहस और सुख देता है।

-यशपाल

अनुक्रम

परिचय	7
अजानी अंधेरी राह	9
समय का प्रवाह	24
बहिश्त की राह	41
त्याग की राह	59
जीवन की चाह	91
ग्राम की राह	130
घर की राह	139
अपने की चाह	162
देशद्रोही	268

परिचय

परिचय के यह शब्द पुस्तक समाप्त हो जाने के बाद लिखे गये हैं, परंतु इन्हें आरंभ में दिया जा रहा है। रीति और उपयोगिता की दृष्टि से यही उचित भी जान पड़ता है।

लेखक यदि कलाकार भी है तो उसके प्रयत्न की सार्थकता समाज के दूसरे श्रमियों की भांति कुछ उपयोगिता की सृष्टि करने में ही है। उसके श्रम की उपयोगिता समाज के विकास में सामर्थ और पूर्णता की ओर ले जाने में ही है!

लेखक के लिये समाज के अस्तित्व से स्वतंत्र कोई कल्पना कर सकना संभव नहीं। उसकी कला या प्रयत्न का आधार समाज की अनुभूतियाँ, आकांक्षाएँ और आदर्श होते हैं। हमारी अनुभूति हमारे अनुभवों का सार होती है और हमारे आदर्श हमारी सवारी हुई कल्पनाएं हैं। आदर्श के हम जीवन की आकांक्षा और चेष्टा खो बैठेंगे। आदर्श हमारे जीवन का लक्ष्य है परंतु यथार्थ की हमारी अनुभूति भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। वह अनुभूति असंतोष और उसे दूर करने का उत्साह उत्पन्न कर आदर्श की सृष्टि करती है। आदर्श की तुलना में यथार्थ अरुचिकर होगा ही वर्ना आदर्श की कल्पना और उसके लिये प्रयत्न ही क्यों किया जाये?

यथार्थ से खिन्न होकर हम आदर्श की ओर बढ़ना चाहते हैं। यथार्थ के अरुचिकर वीभत्स सत्य की नग्नता को प्रकट करके उससे मुक्ति की इच्छा को उत्कट और दुर्दमनीय बनाना आवश्यक होता है। हमारी अवस्था का नग्न रूप अतृप्त 'शिष्णोदर' का चीत्कार भी है। वह श्रेणी संघर्ष और राष्ट्रों के संघर्ष के रूप में भी प्रकट होता है। वह जघन्य है, परंतु वह हमारी अपनी सामाजिक स्थिति की वास्तविकता है। हमारा साहित्य कला नैतिकता और न्याय की धारणा हमारी शिष्णोदर की अतृप्त आवश्यकता की पूर्ति के प्रयत्न हैं। हमारी परम्परागत सुरुचि और संस्कृति इन प्रयत्नों को आवरण देकर संतुष्ट है। जिन लोगों को सुरुचि और संस्कृति का अवसर और सौभाग्य प्राप्त नहीं है वे भी मनुष्य ही हैं। उनके चीत्कार को प्रकट करना क्या कला का कर्तव्य नहीं है?

मनुष्य के इस अंसतोष को रूढ़िगत विश्वास और प्रवंचना से ढाक देना मुक्ति का उपाय नहीं है। हमारा